हिन्दी कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन संघर्ष और प्रतिरोध

हरेन्द्र कुमार
सहायक प्राध्यापक हिन्दी विभाग
एम0 एल0 आर्य कॉलेज, कसबा, पूर्णियाँ

सारांश- आदिवासी समाज प्राचीन काल से ही भारतीय समाज का अभिन्न हिस्सा रहा है, जो सदियों से जंगलों, पर्वतों और प्रकृति के बीच नैसर्गिक रूप से निवास कर रहा था। किन्तु आज वह विद्रोही होकर हथियार उठाने के लिए विवश है, इसका प्रमुख कारण यह है कि अंग्रेजों ने सन् 1865 में वन विभाग का गठन किया। इसके पश्चात् सन् 1927 में वन कानून बनाया गया, जिसके तहत आदिवासियों का आरक्षित वन में प्रवेश वर्जित कर दिया गया। यह कानून वर्तमान समय में भी लागू है। स्वतन्त्र भारत में सामंतों, पूंजीपतियों ने उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया। केंद्र सरकार ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों जंगलों, पहाड़ों, प्राकृतिक संसाधनों को बेचकर उन्हें जल, जंगल, पर्वतों आदि स्थानों से अपदस्थ कर दिया। आदिवासी जीवन की समस्याओं की शुरूआत इसी समय से होती है। आदिवासी समुदाय का संघर्ष, जल, जीवन प्राकृतिक संसाधनों के साथ ही अपनी सामाजिक स्थिति को लेकर है।

आदिवासी साहित्य चाहे वह आदिवासी लेखकों द्वारा लिखा गया हो अथवा गैर आदिवासी लेखकों द्वारा सभी के साहित्य में आदिवासी समाज के यथार्थ का अंकन एवं प्रतिरोध का स्वर अभिव्यक्त हुआ है। आदिवासी कविता में अतीत के प्रति मोह, वर्तमान की त्रासदी और भविष्य के उनके सपने हैं, जिसे वे हकीकत में तब्दील करने की कोशिश कर रहे हैं। वर्तमान समय में आदिवासी समाज देश में अपने खिलाफ होने वाली राजनीतिक चालाकियों और अपने साथ होने वाले षडयंत्रों को समझने लगे हैं। उन्हें उत्थान, खुशहाली, बराबरी के नारों व वादों की सच्चाई समझ में आने लगी है। युवा कवयित्री 'आलोका 'कुजूर' ने 'पहाड़ पर' कविता के माध्यम से आदिवासी समाज के साथ किए जाने वाले वादों की अभिव्यक्ति की है।

बताया गया कोशिश चल रही थी,
समाजवाद लाने की
बिगुल बजे, अश्व सजे।
मार्च और फ्रंट हुए
कदम मिलने पर तालियाँ बजी
पर आंखें खुली तो बस बाजार थे
दु:खों के पहाड़ दो दूरी चार थे।[1]

आदिवासी कविताओं में जंगल के विनाश, आदिवासी संस्कृति और सम्पदा के क्षरण के साथ ही उनके विस्थापन की समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। आदिवासी कविता की प्रमुख विशेषता यह है कि यह कविता इस समुदाय की समस्याओं के साथ प्राकृतिक संसाधनों के अधिकाधिक दोहन से समूची मनुष्यता पर भविष्य में मंडरा रहे संकटों के प्रति भी सचेत करती है।

बीज शब्द- प्राकृतिक संसाधन, दोहन, पर्यावरण, जंगल, क्षरण, विस्थापन, प्रतिरोध, शोषण, त्रासदी, अस्तित्व, संघर्ष।

मूल आलेख-आदिवासी समाज अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु निरंतर संघर्षरत है। आदिवासी समाज का अस्तित्व प्राचीनकाल से भारतीय समाज से जुड़ा रहा है। किन्तु वर्तमान समय में यह समुदाय जल, जंगल, जमीन के लिए संघर्ष कर रहा है। आदिवासी कवियों की कविताओं में जंगल और समूचे पर्यावरण के नष्ट होने के साथ इस वर्ग पर किए जा रहे अमानवीय व्यवहार का वर्णन किया गया है। आदिवासी कविता जागरूक आदिवासियों के प्रतिरोध की आवाज है जो निरन्तर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। आदिवासी कविता जल जंगल और समूचे पर्यावरण के भविष्य में नष्ट होने की गंभीर चिंता की ओर सभी का ध्यान केंद्रित करती हैं। वनों की कटाई, प्रकृति के दोहन के कारण वनों के जीव-जन्तु स्वयं मरने लगे हैं। जंगल के नष्ट होने के दर्द को सरिता सिंह बड़ाइक ने 'आज का जंगल' कविता में अभिव्यक्त किया है-

विचरती थी मैं बचपन में
पर्वतों की चोटियों पर धन वादियों में
मचल-मचल कर चंचल बादलों जैसा
इठलाती थी पवन जैसी/नहीं है, अब वैसा जंगल
शोभता था घने पेड़-पौधों से जंगल
गूँजती थी चरवाहों की मुरली
नहीं है अब वैसा जंगल
खड़कती है जूतों की आवाज सूखी पत्तियों पर
छा गया है आतंक का साम्राज्य चहुँओर।[2]

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। जो प्राणीमात्र को आकर्षित व प्रभावित करता है। आदिवासी समुदाय अन्य व्यक्तियों की तुलना में प्रकृति की नैसर्गिकता के अधिक समीप रहता है और उसका जीवन भी प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहता है इसलिए प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का सार्वधिक प्रभाव इसी समुदाय पर पड़ता है। यद्यपि समस्त प्राणी जगत प्राकृतिक संसाधनों के द्वारा शुद्ध हवा, स्वच्छ जल चाहता है किन्तु वह अधिकाधिक मात्रा में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन करने में पीछे नहीं है। लेखिका वन्दना टेटे मनुष्य की इस प्रवृत्ति को जंगली फूल पलाश के द्वारा प्रस्तुत किया गया है, यथा-

सबको पलाश चाहिए
जंगल उजाड़ कर भी चाहिए।
पर असभ्य आदिवासियों को
नहीं चाहिए पलाश/उन्हें चाहिए महुआ, कुसुम, बेर
और केउंद से लदे जंगल
जामुन से गदराए छतनार पेड़
आम और कटहल से रस-रसाए वन-प्रान्तर
आदिवासी जानते हैं
पलाश शब्दों की नर्सरी में नहीं फूलते
उनके खिलने और टहटहाने के लिए मिट्टी,

पहाड़ और नदियों की जरूरत होती है
असली पलाश तो पुटुस की झाड़ों के बीच
महुआ और कुसुम के संग-संग ही खिला है।[3]

इंसान के लोभ, उसकी दरिंदगी और अर्थपिशाचिता से जंगल उजड़ रहे हैं, नदिया सूख रही हैं, पहाड़ तोड़े और समाप्त किए जा रहे हैं, पशु, पक्षी आश्रय विहिन होकर समाप्त हो रहे हैं, प्राणियों वनस्पतियों और अनाज की कई प्रजातियाँ विलुप्त होती जा रही है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों जंगल बेचकर आदिवासी समुदाय को उनके मूलनिवास से विस्थपित किया जा रहा है और विरोध करने पर उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जा रहा है। कवि आदिवासी समुदाय के साथ किए जा रहे ऐसे व्यवहारों पर आक्रोशित होकर समस्त शोषक वर्ग से आदिवासियों की मूल संपत्ति प्राकृतिक संसाधन के दोहन को लेकर प्रश्न करता है-

क्यों उठ रही हैं लपटें, क्यों हुआ है लाल जंगल
देना पड़ेगा उत्तर करता सवाल जंगल
क्यों घास-फूल सब बारूद बन गये हैं
कैसी है आग जिससे लेता उबाल जंगल।[4]

आदिवासी रचनाकर अपनी कविताओं में मनुष्य की भोगवादी दृष्टि, सर्वाधिकारवादी मानसिकता भूमण्डलीकरण और बाजारवाद की निर्मम सर्वग्रासी नीतियों तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों व समर्थ लोगों द्वारा जल, जंगल, नदी, पहाड़ सब कुछ हड़प लेने की दानवी इच्छा और उसके खतरों से समस्त आदिवासी समुदाय को सचेत किया है। रामदयाल मुंडा ने 'जंगल जल रहें' कविता के द्वारा इस स्थिति से आदिवासी समुदाय को सचेत करने का प्रयास किया है-

जंगल जल रहे हैं,/पहाड़ जल रहे हैं,
नदियाँ सूख रही हैं/स्त्रोत सूख रहे हैं
लोग तुम्हें पकड़ लेंगे/लोग तुम्हें दबोच लेंगे
लोग तुम्हें पका खाएँगे/लोग तुम्हें भून चबाएँगे।[5]

ऐसी स्थिति में आदिवासी रचनाकार रामदयाल मुंडा आदिवासी समुदाय से शीशम और पत्थर का घर बनाकर अर्थात् एकजुटता तथा दृढ़ वैचारिकता के साथ अपने अस्तित्व, अपने जीवन, अपनी संस्कृति, जल, जंगल, जमीन, पहाड़, वनस्पतियों और जीव जंतुओं को बचाने का आह्वान करते है।

आदिवासी कविताओं में विषय वैविध्य विद्यमान है एक ओर रचनाकार आदिवासियों समुदायों के जल, जंगल, जमीन के संघर्ष को अभिव्यक्त करता है, तो वहीं दूसरी ओर आदिवासियों के सामाजिक स्थिति के संघर्ष को भी प्रस्तुत किया है जिससे रचनाकार की व्यापक दृष्टि का पता चलता है। शोषण की समस्याओं के साथ पिछड़े और शोषित आदिवासी समाज के ऊपर अंधविश्वासों और जादू-टोना करने के आरोप लगाकर उन्हें दण्डित करने का अमानवीय चित्रण भी आदिवासी कविताओं में अभिव्यक्त हुआ है। कवयित्री ज्योति लाकड़ा ने 'टोहनी' कविता में इसके यथार्थरूप को प्रस्तुत किया है-

न्योता नहीं जाता उसे शुभ कार्यों में
नहीं दिया जाता उसे गोद में उसकी नवजात शिशु
नहीं दिखायी जाती उसे नई दुल्हन
खिलाया जाता है उसे कच्चा कलेजा
मुडवाकर केश घुमायी जाती है वह पूरे गाँव में
पीटा जाता है उसे इतना की दुबारा उठ न सके।
लूट ली जाती है उसकी अस्मत
कर दी जाती है उसकी हत्या।[6]

आदिवासी समाज जल जीवन से संघर्ष करने के साथ भारतीय हिन्दूवादी सामाजिक संरचना से भी संघर्ष कर रहा है जिसके आधार पर यह समुदाय सदियों से शोषित और पीड़ित रहा है। यद्यपि वर्तमान समाज में इस वर्ग की स्थिति में सुधार हो रहा है अनेक आदिवासी लेखक, लेखिकाएं भी साहित्य के माध्यम से अपने जीवन के अनुभवों द्वारा समस्त आदिवासी समुदाय के सामाजिक संघर्ष को अभिव्यक्त कर शोषण के खिलाफ प्रतिरोध के स्वर को उठा रहे हैं किन्तु वर्तमान समय तक इस समुदाय के लिए किया गया सुधार अपेक्षित नहीं है।

पुरूषों से अधिक शोषण इस समुदाय की महिलाओं के साथ होता है। हाल ही में मणिपुर में आदिवासी महिला के साथ घटित अमानवीय घटना किसी से छिपी नहीं है। फिर भी आदिवासी महिलाएं अपने हक और अन्याय के विरूद्ध निरंतर संघर्ष कर रही हैं। आदिवासी तबके की कवयित्रियों में जसिन्ता केरकेट्टा का स्थान अग्रणी है। देश-दुनिया में होने वाली राजनीति की भी उन्हें अच्छी समझ है इसलिए वह भलीभांति जानती है कि हमारे समाज में गरीबों, आदिवासी महिलाओं के शोषण की खबरें भी बेंची जाती हैं। कुछ लोग सहानुभूति दिखाकर ऐसी महिलाओं का खुद शोषण कर रहे हैं। आदिवासी महिला के शोषण की अभिव्यक्ति को समाचार पत्रों के माध्यम से बिकने से रोकने की अभिव्यक्ति वह 'जमुनी रोको खुद को' बिकने से शीर्षक के द्वारा की हैं-

ओ जमुनी देखो/तुम्हारे दर्द का हर दिन अब
सज रहा है खबरों का बाजार/देश से लेकर विदेशों तक
देखो तुम्हारा दर्द कैसे बिक रहा है/पति से तुम्हारे पिट जाने की
पड़ोसी से तुमसे दुष्कर्म की/प्रेम से पाया अनचाहा गर्भ मिटाने की
होने वाली तुम्हारी हत्या की/तुम्हारे शोषण और उत्पीड़न की
खबर/हर तरह की चटपटी मसालेदार/देखो तुम्हारा दर्द हो रहा है
व्यापार/तुम दर्द हो, खबर हो या इंसान/जमुनी तुम आखिर हो
कौन।[7]

आदिवासी कविता में सामंती और पूँजीवादी ताकतों तथा साम्राज्यवादी शक्तियों की साजिशों का पर्दाफाश किया गया है। ये सांमती शक्तियाँ शिक्षा, चिकित्सा और आधुनिक विकास व आदिवासी समुदाय की यथास्थिति में परिवर्तन के नाम पर आदिवासी बाहुल क्षेत्रों में प्रवेश कर धीरे-धीरे समूचे जल, जंगल, जमीन तथा खनिज पदार्थों पर कब्जा कर रही हैं। जिससे जंगल के असली दावेदार आदिवासी समुदाय जो प्राकृतिक संसाधनों को सदियों से सुरक्षित कर रहे थे, वे अपने मूल स्थान से विस्थापित किये जा रहे हैं और हमारी चुनी हुई लोकतांत्रिक सरकारें भी उन्हीं का साथ दे रही हैं। इस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों के दोहन में सरकार का भी योगदान है। आदिवासी

समुदाय के जीवन का यह दुःख वंदना टेटे की ''पहाड़ की जिन्दगी'' कविता में व्यक्त हुआ है-

कभी शांति की खोज में/तो कभी पनाह मांगते, डराते
और कभी प्रेम के छलावे से
घुस आये तुम हमारे पहाड़ों में, घरों में,
और डाल लिया डेरा-घेरा
कर दिया हमें ही बेदखल/तुम तो आए ही
साथ आयी तुम्हारी भाषा, संस्कृति और दर्शन भी
और लील गए अहिस्ता-अहिस्ता
लीलता है जैसे बनफोरा।[8]

आदिवासी कविताएं स्त्री पक्ष से भी सम्बन्धित है जिसमें आदिवासी स्त्रियों के सुख-दुख, दिनचर्या की मुश्किले, अच्छाइयाँ, उनकी नैसर्गिक सुन्दरता और बाहरी दिकू समाज और स्वयं आदिवासी पुरूषों द्वारा भी उन पर किए जाने वाले अत्याचारों का चित्रण किया गया है इसीलिए सभी स्त्रियाँ ईश्वर से सामूहिक रूप से मांग करती है कि अगले जन्म से दुख भोग रही सभी स्त्रियों को पुरूष और पुरूषों को स्त्री बनाया जाय। आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल ने 'मां' कविता में आदिवासी मां के प्रेम, समर्पण और उनके संघर्षो का यथार्थ वर्णन किया है-

माँ को पता है पिता की नींद
और बच्चों की जिद/माँ को सब कुछ पता है
माँ को मेरी कविताओं के बारे में भी बेहतर पता है
जब भी देखती है कुछ लिखते
तो कितना संभल-संभल के चलती है
भरी दुपहरिया में ढेंकी में धान कटती
सूप से फटकती साफ करती
अपने कालखंड को जैसे/कई कार कूटती उसकाती है
अपने बुरे वक्त को/जाँता से दारती जैसे दाल
घूमती-बाँधती है अपने रिश्तों की डोर।[9]

शिक्षा ही मुक्ति का साधन है। जो किसी भी समाज की मुक्ति के लिए नया पंथ प्रदान करती है। शिक्षा के कारण ही आदिवासी समाज में जागरूकता बढ़ रही है। जिससे नया शिक्षित आदिवासी समाज विकसित हो रहा है जो समाज में अपनी अस्मिता, अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है। जागरूक नई पीढ़ी अपने हितो और अधिकारों को बेहतर ढंग से समझ रही है। आदिवासी लेखक इस वर्ग को शिक्षा की ओर उन्मुख करने के लिए प्रयासरत् है क्योंकि यही एकमात्र साधन है जो आदिवासी समुदाय को अपनी यथास्थिति में परिवर्तन के लिए दिशा प्रदान करेगी। आदिवासी कवयित्री रोज केरकेट्टा ने 'सिर्फ पुस्तक मत पढ़ना' कविता में किताबों में निहित ज्ञान को आदिवासी समुदाय को गंभीरता से ग्रहण करने पर जोर दिया है यथा-

सिर्फ पुस्तक मत पढ़ना/पुस्तक की बातों को पढ़ना
सिर्फ आँखों से पुस्तक मत पढ़ना/दिमाग खोलकर पढ़ना
पुस्तक पढ़कर हक को जानना
कानून को जानना/साथी को जानना
और पहचानना बैरी को, यह हक है तुम्हारा
मित्र है पुस्तक, आँख खोलती हैं।
साहस बढ़ाती है/वजूद की पहचान दिलाती है
इसलिए बार-बार पुस्तक पढ़ना।[10]

आदिवासी कविताओं की प्रमुख विशेषता है 'उनकी संघर्षशील चेतना की अभिव्यक्ति है'। आदिवासी कवि अपने समाज की समस्याओं का ही चित्रण नहीं करते अपितु अपने तबके के शक्ति, साहस और अदम्य जिजीविषा का परिचय भी देते है। इनकी कविताएं सभी प्रकार के शोषण और बर्बर हमलों के विरूद्ध जंग का ऐलान करती है। आदिवासी कवियों के आदर्श बिरसा मुण्डा है। आदिवासी कवि, कवयित्री उनके आदर्शों व शौर्यगाथाओं से प्रेरणा लेकर समस्त आदिवासी समुदाय में क्रांतिकारी चेतना को जाग्रत करने का प्रयास कर रहे हैं। इस क्रांतिकारी चेतना की अभिव्यक्ति का कुछ अंश निर्मला पुतुल की कविता के मे प्रस्तुत हुआ है-

उठो कि अपने अंधेरे के खिलाफ उठो
उठो अपने पीछे चल रही साजिश के खिलाफ
उठो कि तुम जहाँ हो वहाँ से उठो
जैसे तूफान से बवंडर उठता है।
उठती है जैसे राख में दबी चिनगारी
देखो अपनी बस्ती के सीमान्त पर
जहाँ धराशायी हो रहे हैं पेड़।[11]

आदिवासी कवियों ने आदिवासी समाज की समस्याओं से सम्बन्धित पर्याप्त कविताएं लिखी। इनकी कविताओं में एक अलग प्रकार की चीख, दर्द, तड़प है। आदिवासी समुदाय की कविताओं में इनके अस्तित्व, अस्मिता के लिए प्रतिरोध का स्वर अंतर्निहित है। जो इनके जंगल, जमीन से प्रारम्भ होकर इनकी सामाजिक स्थिति को व्यक्त करता है। इनकी कविताओं एक बड़े जनसमुदाय की आन्तरिक जीवन के दुःखों अभावों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करती है। जिसे इस धरती की एक बड़ी आबादी का हिस्सा सैकड़ों सालों से सहता आ रहा है और यह समुदाय आजाद भारत में भी गुलामों की तरह जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। आदिवासी कविताएं इस समुदाय के दर्द को आक्रोश में बदलने की कथा भी है जिसे आदिवासी कवि द्वारा इनके भीतर के उत्पीड़न की आग को हुंकार और ललकार के रूप में कविताओं में शब्दबद्ध किया जा रहा है।

****

सन्दर्भः-

1.आलोका कुजूर, कलम को तीर होने दो, सम्पादिका-रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, 4695, 214, दरियागंज, नयी दिल्ली-10002, संस्करण 2015, पृ0सं0 184।
2.बड़ाइक, सरिता सिंह, नन्हे सपनों का सुख, प्रकाशन रमणिका फाउंडेशन संस्करण 2013, पृ0सं0 104।
3.टेटे, वन्दना, आदिवासी विरासत और जीवन यथार्थ प्रतिनिधि स्वर कोन जोगा, वाणी प्रकाशन, 2015, पृ0सं0 60-61।
4.अनूप, वशिष्ठ, रोशनी की कोपले (गजल संग्रह), उद्भावना प्रकाशन, एच 55 सेक्टर, राजनगर, गाजियाबाद, प्रकाशन 2010, पृ0सं 12।
5.मुंडा, रामदयाल, जंगल जल रहे है, कविता, प्रकाशन वर्ष 2002।
6.केरकेट्टा, जंसिता, ईश्वर और बाजार, प्रकाशन, रमणिका, फाउंडेशन 1004, पृ0सं0-88।
7.वही, पृ0सं0-112।
8.टेटे, वन्दना, आदिवासी विरासत और जीवन यथार्थ प्रतिनिधि स्वर कोनजोगा, वाणी प्रकाशन, 2015, पृ0सं0 76-77।
9..केरकेट्टा, जंसिता, ईश्वर और बाजार प्रकाशन रमणिका फांउडेशन, 1004, पृ0स0ं 88।
10.पुतुल निर्मला, बेघर सपने, आधार प्रकाशन 2014, पृ0सं0 53-54।